

# बहादुरशाह ज़फ़र

तिगता नहीं है दिल मेरा उजड़े दयार में किसकी बनी है आलमे-नापायदार में बुलबुल को बागबाँ से न सय्याद से गिला किस्मत में कैद लिखी थी, फ़सले बहार में इन हसरतों से कह दो कहीं और जा बसें इतनी जगह कहाँ है दिले-दागदार में इक शाखे-गुल पे बैठ के बुलबुल है शादमाँ काँटे बिछा दिए हैं दिले-लालहजार में उम्रे-दराज माँग के लाए थे चार दिन दो आरजू में कट गए दो इंतजार में दिन ज़िंदगी के खत्म हुए शाम हो गई फैला के पाँव सोएँगे कुंजे-मजार में कितना है बदनसीब ज़फ़र दफ़्न के लिए दो गज़ ज़मीन भी न मिली कूए-यार में (1857 के 150 वर्ष होने पर)



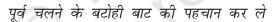


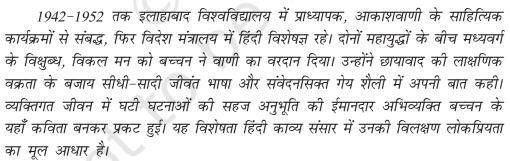
जन्म : सन् 1907, इलाहाबाद

प्रमुख रचनाएँ: मधुशाला (1935), मधुबाला (1938), मधुकलश (1938), निशा निमंत्रण, एकांत संगीत, आकुल-अंतर, मिलनयामिनी, सतरंगिणी, आरती और अंगारे, नए पुराने झरोखे, टूटी-फूटी कड़ियाँ (काव्य संग्रह); क्या भूलूँ क्या याद करूँ, नीड़ का निर्माण फिर, बसेरे से दूर, दशद्वार से सोपान तक (आत्मकथा चार खंड); हैमलेट, जनगीता, मैकबेथ (अनुवाद); प्रवासी की डायरी (डायरी)

उनका पूरा वाङ्मय 'बच्चन ग्रंथावली' के नाम से दस खंडों में प्रकाशित।

निधन : सन् २००३, मुंबई में





मध्ययुगीन फ़ारसी के किव उमर खय्याम का मस्तानापन हरिवंश राय बच्चन की प्रारंभिक किवताओं विशेषकर मधुशाला में एक अद्भुत अर्थ-विस्तार पाता है—जीवन एक तरह का मधुकलश है, दुनिया मधुशाला है, कल्पना साकी और किवता वह प्याला जिसमें ढालकर जीवन पाठक को पिलाया जाता है। किवता का एक घूँट जीवन का एक घूँट है। पूरी तन्मयता से जीवन का घूँट भरें, कड़वा-खट्टा भी सहज भाव से स्वीकार करें तो अंतत: एक





आरोह

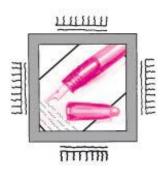
सूफ़ियाना–सी बेखयाली मन पर छाएगी, एक के बहाने सारी दुनिया से इश्क हो जाएगा, और तेरा–मेरा के समस्त झगड़े काफ़ूर हो जाएँगे। इसे बच्चन का **हालावादी** दर्शन कहते हैं।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि उनकी युगबोध-संबंधी कविताएँ जो बाद में लिखी गईं, उनका मूल्यांकन अभी तक कम ही हो पाया है। बच्चन का कवि-रूप सबसे विख्यात है, पर उन्होंने कहानी, नाटक, डायरी आदि के साथ बेहतरीन आत्मकथा भी लिखी है—जो ईमानदार आत्मस्वीकृति और प्रांजल शैली के कारण निरंतर पठनीय बनी हुई है।

यहाँ उनकी कविता **आत्मपरिचय** तथा गीत संग्रह **निशा निमंत्रण** का एक गीत दिया जा रहा है। अपने को जानना दुनिया को जानने से ज्यादा कठिन है। समाज से व्यक्ति का नाता खद्रा-मीठा तो होता ही है। जगजीवन से पूरी तरह निरपेक्ष रहना संभव नहीं! दुनिया अपने व्यंग्य-बाण और शासन-प्रशासन से चाहे जितना कष्ट दे, पर दुनिया से कटकर मनुष्य रह भी नहीं पाता। क्योंकि उसकी अपनी अस्मिता, अपनी पहचान का उत्स, उसका परिवेश ही उसकी दुनिया है— अपना परिचय देते हुए वह लगातार दुनिया से अपने द्विधात्मक और द्वंद्वात्मक संबंधों का मर्म ही उद्घाटित करता चलता है और पूरी कविता का सारांश एक पंक्ति में यह बनता है कि दुनिया से मेरा संबंध प्रीतिकलह का है, मेरा जीवन विरुद्धों का सामंजस्य है— उन्मादों में अवसाद, रोदन में राग, शीतल वाणी में आग, विरुद्धों का विरोधाभासमूलक सामंजस्य साधते-साधते ही वह बेखदी, वह मस्ती, वह दीवानगी व्यक्तित्व में उतर आई है कि दुनिया में हूँ, दुनिया का तलबगार नहीं हूँ / बाज़ार से गुज़रा हूँ खरीदार नहीं हूँ -जैसा कुछ कहने का उस्सा पैदा हुआ है। यह उस्सा ही छायावादोत्तर गीतिकाव्य का प्राण है। किसी असंभव आदर्श (युटोपिया) की तलाश में सारी दुनियादारी ठुकराकर उस भाव से दुनिया से इन्हें कोई वास्ता नहीं है। प्रीति-कलह का यही वितान और विरोधाभास का यह विग्रह इन्हें दूर टिमटिमाते तारे की अबूझ रहस्यात्मकता से लहालोट रखता है। निशा निमंत्रण से उद्धत गीत में प्रकृति के दैनिक परिवर्तनशीलता के संदर्भ में प्राणि-वर्ग (विशेषकर मनुष्य) के धडकते हृदय को सुनने की काव्यात्मक कोशिश है। बहुत ही सरल सर्वानुभृत बिंबों के ज़रिये किसी अगोचर सत्य की रूहानी छुअन महसूस करा देना बच्चन की जो अलग विशेषता है, यह गीत उसका एक बेहतर नमुना है। किसी प्रिय आलंबन या विषय से भावी साक्षात्कार का आश्वासन ही हमारे प्रयास के पगों की गति में चंचल तेज़ी भर सकता है— अन्यथा हम शिथिलता और फिर जड़ता को प्राप्त होने के अभिशिप्त हो जाते हैं। गीत इस बड़े सत्य के साथ समय के गुज़रते जाने के एहसास में लक्ष्य-प्राप्ति के लिए कुछ कर गुज़रने का जज़्बा भी लिए हए है।



# आत्मपरिचय



मैं जग-जीवन का भार लिए फिरता हूँ, फिर भी जीवन में प्यार लिए फिरता हूँ; कर दिया किसी ने झंकृत जिनको छूकर मैं साँसों के दो तार लिए फिरता हूँ!

मैं स्नेह-सुरा किया का पान करता मैं कभी न जग का ध्यान किया करता हूँ, उनको, जो पृछ रहा जग जग में अपने मन गान किया का करता

मैं निज उर के उद्गार लिए फिरता हूँ, मैं निज उर के उपहार लिए फिरता हूँ; है यह अपूर्ण संसार न मुझको भाता मैं स्वप्नों का संसार लिए फिरता हूँ!

जला हृदय में अग्नि, दहा करता दोनों में सुख-दुख मग्न रहा करता जग भव-सागर तरने को नाव बनाए, भव मौजों पर मस्त बहा करता

मैं यौवन का उन्माद लिए फिरता हूँ, उन्मादों में अवसाद लिए फिरता हूँ, जो मुझको बाहर हँसा, रुलाती भीतर, मैं, हाय, किसी की याद लिए फिरता हूँ!



आरोह

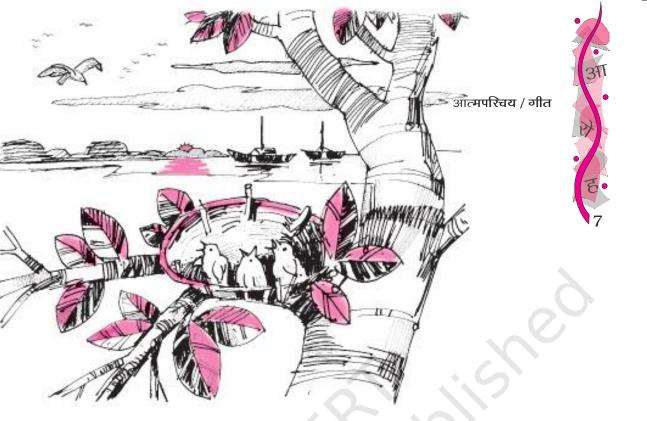
कर यत्न मिटे सब, सत्य किसी ने जाना? नादान वहीं है, हाय, जहाँ पर दाना! फिर मूढ़ न क्या जग, जो इस पर भी सीखे? मैं सीख रहा हूँ, सीखा ज्ञान भुलाना!

मैं और, और जग और, कहाँ का नाता, मैं बना-बना कितने जग रोज़ मिटाता; जग जिस पृथ्वी पर जोड़ा करता वैभव, मैं प्रति पग से उस पृथ्वी को ठुकराता!

मैं निज रोदन में राग लिए फिरता हूँ, शीतल वाणी में आग लिए फिरता हूँ, हों जिस पर भूपों के प्रासाद निछावर, मैं वह खंडहर का भाग लिए फिरता हूँ।

मैं रोया, इसको तुम कहते हो गाना, मैं फूट पड़ा, तुम कहते, छंद बनाना; क्यों कवि कहकर संसार मुझे अपनाए, मैं दुनिया का हूँ एक नया दीवाना!

मैं दीवानों का वेश लिए फिरता हूँ, मैं मादकता नि:शेष लिए फिरता हूँ; जिसको सुनकर जग झूम, झुके, लहराए, मैं मस्ती का संदेश लिए फिरता हूँ!



## दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!

हो जाए न पथ में रात कहीं,
मंजिल भी तो है दूर नहीं—
यह सोच थका दिन का पंथी भी जल्दी-जल्दी चलता है!
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!

बच्चे प्रत्याशा में होंगे, नीड़ों से झॉॅंक रहे होंगे— यह ध्यान परों में चिड़ियों के भरता कितनी चंचलता है! दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!

मुझसे मिलने को कौन विकल?

मैं होऊँ किसके हित चंचल?

यह प्रश्न शिथिल करता पद को, भरता उर में विह्वलता है!

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!



आरोह





## कविता के साथ

- 1. कविता एक ओर जग-जीवन का भार लिए घूमने की बात करती है और दूसरी ओर **मैं कभी न जग का ध्यान किया करता ह**ँ— विपरीत से लगते इन कथनों का क्या आशय है?
- 2. जहाँ पर दाना रहते हैं, वहीं नादान भी होते हैं— किव ने ऐसा क्यों कहा होगा?
- 3. मैं और, और जग और कहाँ का नाता- पंक्ति में और शब्द की विशेषता बताइए।
- 4. *शीतल वाणी में आग* के होने का क्या अभिप्राय है?
- 5. बच्चे किस बात की आशा में नीड़ों से झाँक रहे होंगे?
- 6. *दिन जल्दी-जल्दी ढलता है*-की आवृत्ति से कविता की किस विशेषता का पता चलता है?



## कविता के आसपास

संसार में कष्टों को सहते हुए भी खुशी और मस्ती का माहौल कैसे पैदा किया जा सकता है?



#### आपसदारी

\* जयशंकर प्रसाद की *आत्मकथ्य* किवता की कुछ पंक्तियाँ दी जा रही हैं। क्या पाठ में दी गई आत्मपरिचय किवता से इस किवता का आपको कोई संबंध दिखाई देता है? चर्चा करें।

### आत्मकथ्य

मधुप गुन-गुना कर कह जाता कौन कहानी यह अपनी,

\* \* \* \*

3सकी स्मृति पाथेय बनी है थके पिथक की पंथा की।
सीवन को उधेड़ कर देखोगे क्यों मेरी कंथा की?
छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथाएँ आज कहूँ?
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता में मौन रहूँ?
सुनकर क्या तुम भला करोगे मेरी भोली आत्म-कथा?
अभी समय भी नहीं, थकी सोई है मेरी मौन व्यथा।

– जयशंकर प्रसाद

